शास्त्रों

के अर्थ समझने की पद्धति

-नेमीचन्द पाटनी

शास्त्रों के अर्थ समझने की पद्धति

लेखक :

नेमीचन्द पाटनी

प्रकाशक :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए–4, बापूनगर, जयपुर–302015

प्रथम चार संस्करण : 11 हजार
(1958 से अद्यतन)
पंचम संस्करण : 1 हजार
(20 मार्च, 2013)
अष्टान्हिकापर्व
योग : 12 हजार

मूल्य : तीन रुपए

मुद्रक :
श्री प्रिन्टर्स
मालवीयनगर
जयपुर - 302017

प्रकाशकीय

शास्त्रों के अर्थ समझने की पद्धति का यह नवीनतम संशोधित संस्करण प्रकाशित करते हुए हमें अतीव प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। श्री नेमीचन्दजी पाटनी द्वारा लिखित प्रस्तुत पुस्तिका का सर्वप्रथम प्रकाशन पाटनी दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला के माध्यम से सन् 1958 में किया गया था। पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा 1967 में इसे पुनः प्रकाशित किया गया। अब यह पुस्तिका काफी समय से अनुपलब्ध थी अतः ब्र. यशपालजी के बार-बार आग्रह पर इसे परिमार्जित कर प्रकाशित किया जा रहा है।

वैसे तो यह लघु पुस्तिका है परन्तु इसके माध्यम से शास्त्रों का गूढ़ रहस्य समझकर उसका अध्ययन सरल हो जाता है। पाठकगण इसके माध्यम से यथार्थ ज्ञान प्राप्तकर लाभान्वित हों, ऐसी पवित्र भावना है।

ब्र. यशपाल जैन
प्रकाशनमंत्री

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करनेवाले दातार
1251/ रुपये श्री मगनमल नेमीचन्द पाटनी हस्ते नगेन्द्रजी पाटनी, आगरा द्वारा सधन्यवाद प्राप्त हुये।

शास्त्रों के अर्थ समझने की पद्धति

आगम के अभ्यास की आवश्यकता

मोक्षार्थी को मोक्षमार्ग प्राप्त करने के लिए शास्त्र अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। शास्त्र अध्ययन के द्वारा ही वस्तुस्वरूप यथार्थ समझ में आता है। उससे स्वपर भेदविज्ञान की सिद्धि होती है और भेदविज्ञान से आत्मज्ञान अर्थात् सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। उसके होते ही ज्ञान और चारित्र भी सम्यकता को प्राप्त हो जाते हैं। अतः सर्वप्रथम मोक्षमार्ग प्राप्त करने के लिए शास्त्र अध्ययन की आवश्यकता है।

इस सम्बन्ध में मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ३०४ में लिखा है कि – **"इसलिए स्यात् पद की सापेक्षता सहित सम्यग्ज्ञान द्वारा जो जीव जिनवचनों में रमते हैं, वे जीव शीघ्र ही शुद्धात्म स्वरूप को प्राप्त होते हैं। मोक्षमार्ग में पहिला उपाय आगमज्ञान कहा है, आगमज्ञान के बिना धर्म का साधन नहीं हो सकता, इसलिए तुम भी यथार्थ बुद्धि द्वारा आगम का अभ्यास करना। तुम्हारा कल्याण होगा।"**

प्रवचनसार की गाथा ८६ में आचार्य श्री ने मोहोपचय के क्षय का उपाय शास्त्रों का सम्यक् प्रकार से अध्ययन बताया है।

आगम अभ्यास का फल पण्डित टोडरमलजी साहब ने पृष्ठ संख्या २६८ में मिथ्यात्व का नाश बताया है – **"अब**

मिथ्यादृष्टि जीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश देकर उनका उपकार करना यही उत्तम उपकार है।" तथा पृष्ठ संख्या १६३ में कहा है कि **"इस मिथ्यात्व बैरी का अंश भी बुरा है, इसलिए सूक्ष्म मिथ्यात्व भी त्यागने योग्य है।"**

अब देखना यह है कि आचार्यों ने शास्त्रों का अध्ययन करने की पद्धति क्या बताई है अर्थात् किस पद्धति से शास्त्र अध्ययन करने से इष्ट की प्राप्ति हो सकती है।

अध्ययन के भी पूर्व यह समझना आवश्यक है कि शास्त्रों के अध्ययन द्वारा क्या तात्पर्य निकालना चाहिए ? अर्थात् किस दृष्टि को मुख्य रखकर अध्ययन करना चाहिये।

शास्त्र तात्पर्य वीतरागता

इस विषय में श्रीमद् अमृतचंद्राचार्य ने पंचास्तिकाय ग्रन्थ की गाथा संख्या १७२ की टीका में लिखा है कि–

"अलं विस्तारेण स्वस्ति साक्षान्मोक्षमार्गसारत्वेन शास्त्रतात्पर्यभूताय वीतरागत्वायेति।"

"विस्तार से पूरा पड़ो जयवंत रहो वीतरागता कि जो साक्षात् मोक्षमार्ग का सार होने से शास्त्र का तात्पर्य है।" मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ संख्या ३०३ में भी कहा है कि – **"जिनमत में तो एक रागादि मिटाने का प्रयोजन है, इसलिए कहीं बहुत रागादि छुड़ाकर थोड़े रागादि कराने के प्रयोजन का पोषण किया है, कहीं सर्व रागादि मिटाने के प्रयोजन का पोषण किया है परन्तु रागादि बढ़ाने का प्रयोजन कहीं नहीं है, इसलिए जिनमत का सर्व कथन निर्दोष है।"**

उपर्युक्त प्रकार से जिनागम के अध्ययन का तात्पर्य एकमात्र वीतरागता है, यह जानकर अपने अध्ययन के फलस्वरूप अपनी परिणति में वीतरागता का पोषण होता हो तो समझना चाहिये कि अध्ययन ठीक प्रकार से चल रहा है, अगर उस अध्ययन से किसी भी प्रकार से रागभावों का पोषण होता हो अथवा परिणति में वीतरागता का उत्पादन अथवा पोषण नहीं होता हो तो समझना चाहिये कि मेरे अध्ययन की प्रणाली में कहीं भूल हो रही है। अतः पद्धति का पुनर्वीक्षण करना चाहिये।

अध्ययन का लाभ

उस अध्ययन का स्वयं को लाभ किस प्रकार हो इस संबंध में मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ संख्या २६८ में कहा है कि – **"जैन शास्त्रों में अनेक उपदेश हैं, उन्हें जाने, परन्तु ग्रहण उसी का करे जिससे अपना विकार दूर हो जावे। अपने को जो विकार हो उसका निषेध करने वाले उपदेश को ग्रहण करे, (लेकिन) उसके पोषक उपदेश को ग्रहण न करे, यह उपदेश औरों को कार्यकारी होगा, ऐसा जाने।"**

पृष्ठ संख्या ३०१ में भी कहा है – **"विवेकी अपनी बुद्धि अनुसार जिसमें समझे तो थोड़े या बहुत उपदेश को ग्रहण करे परन्तु मुझे यह कार्यकारी है, यह कार्यकारी नहीं है - इतना तो ज्ञान अवश्य होना चाहिये; सो कार्य तो इतना ही है कि - यथार्थ श्रद्धान ज्ञान करके रागादि घटाना। सो यह कार्य अपना सिद्ध हो उसी उपदेश का प्रयोजन ग्रहण**

करे, विशेषज्ञान न हो तो प्रयोजन को तो नहीं भूले, इतनी तो सावधानी अवश्य होनी चाहिये। जिसमें अपने हित की हानि हो, उस प्रकार उपदेश का अर्थ समझना योग्य नहीं है। इसप्रकार स्याद्वाददृष्टि सहित जैन शास्त्रों का अभ्यास करने से अपना कल्याण होता है।"

स्व-कल्याण करना ही प्रयोजन

पृष्ठ ३०१ में भी कहा है **"उपदेश के अर्थ को जानकर वहाँ इतना विचार करना कि - यह उपदेश किस प्रकार है, किस प्रयोजन सहित है, किस जीव को कार्यकारी है ? इत्यादि विचार करके उसका यथार्थ अर्थ ग्रहण करें। पश्चात् अपनी दशा देखे, जो उपदेश जिस प्रकार अपने को कार्यकारी हो उसे उसी प्रकार आप अंगीकार करे, और जो उपदेश जानने योग्य ही हो, तो उसे यथार्थ जान ले।"**

उपर्युक्त प्रकार से जिनागम के अध्ययन का प्रयोजन तो मात्र अपना हित साधना है, अर्थात् मिथ्यात्व का नाश करना है।

मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २६६ के अन्त में कहा भी है कि – **"उन प्रकारों को पहिचानकर अपने में ऐसा दोष हो तो उसे दूर करके सम्यक् श्रद्धानी होना, औरों के ऐसे दोष देखकर कषायी नहीं होना, क्योंकि अपना भला बुरा तो अपने परिणामों से है। औरों को तो रुचिवान देखे तो कुछ उपदेश देकर उनका भी भला करे। इसलिए अपने परिणाम सुधारने का उपाय करना योग्य है, सर्वप्रकार के मिथ्यात्वभाव**

छोड़कर सम्यग्दृष्टि होना योग्य है, क्योंकि संसार का मूल मिथ्यात्व है, मिथ्यात्व के समान अन्य पाप नहीं है।'

शास्त्राभ्यासी की अन्तर्भावना

आगे पण्डित टोडरमलजी साहब पृष्ठ २५७ में बताते हैं कि शास्त्र के अभ्यासी की अन्तर्भावना कैसी होना चाहिये – **"इत्यादि के उपदेश से सावधान होकर ऐसा विचार किया कि - अहो ! मुझे तो इन बातों की खबर ही नहीं, मैं तो भ्रम से भूल कर प्राप्त पर्याय ही में तन्मय हुआ, परन्तु इस पर्याय की तो थोड़े ही काल की स्थिति है, तथा यहाँ मुझे सर्व निमित्त मिले हैं, इसलिए मुझे इन बातों को बराबर समझना चाहिये, क्योंकि इनमें तो मेरा ही प्रयोजन भासित होता है।"**

अभ्यास करने की प्रणाली

आगे पृष्ठ २५८ में तत्त्वनिर्णय करने के अभ्यासी को किस प्रकार अभ्यास करना चाहिये, वह पद्धति बताई है – **"सो विवेकपूर्वक एकान्त में अपने उपयोग में विचार करे कि - जैसा उपदेश दिया वैसे ही है या अन्यथा है ? वहाँ अनुमानादि प्रमाण से बराबर समझे, अथवा उपदेश तो ऐसा है, और ऐसा न मानें तो ऐसा होगा, सो इनमें प्रबल युक्ति कौन है और निर्बल युक्ति कौन है? जो प्रबल भासित हो उसे सत्य जाने तथा यदि उपदेश से अन्यथा सत्य भासित हो, अथवा उसमें संदेह रहे, निर्धार न हो, तो जो विशेषज्ञ हों उनसे पूछे, और वे उत्तर दें उनका विचार करे। इसी**

प्रकार जब तक निर्धार न हो तब तक प्रश्न-उत्तर करे। अथवा समान बुद्धि के धारक हों उनसे अपना विचार जैसा हुआ हो वैसा करे और प्रश्न-उत्तर द्वारा परस्पर चर्चा करे, तथा जो प्रश्नोत्तर में निरूपण हुआ हो उसका एकान्त में विचार करे। इसीप्रकार जब तक अपने अन्तरंग में - जैसा उपदेश दिया था वैसा ही निर्णय होकर - भाव भासित न हो तब तक इसी प्रकार उद्यम किया करे।"

पृष्ठ २५६ में कहा है – **"इसलिए भाव भासित होने के अर्थ हेय-उपादेय तत्त्वों की परीक्षा अवश्य करना चाहिए।"** पृष्ठ २६० में भी कहा है कि **"परन्तु सम्यक्त्व का अधिकारी तत्त्व विचार होने पर ही होता है।"**

चारों अनुयोगों की पद्धति

इसप्रकार जिनागम के अभ्यास की उपयोगिता सिद्ध करते हुये, अभ्यास करने की पद्धति का भी ज्ञान कराया है। अब जिनागम के अंग चारों अनुयोगों के शास्त्र, उनका अभ्यास प्रारंभ करने के पूर्व उन अनुयोगों के विषय क्या हैं, किस प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये, किस पद्धति से वर्णन कियां गया है आदि। सभी अनुयोगों की पद्धति का पूरा–पूरा ज्ञान अवश्य होना चाहिये। मोक्षमार्ग प्रकाशक के आठवें अधिकार में विस्तारपूर्वक उक्त विषय का वर्णन किया गया है, साथ ही इन अनुयोगों के अभ्यास में अज्ञानियों द्वारा अनेक दोषों की कल्पना की जाती है, उन सबका भी निराकरण किया गया है। अतः आठवां अधिकार आद्योपान्त पूर्ण मनोयोग

द्वारा अध्ययन करना चाहिये। उसके कतिपय अंश नीचे दिये जा रहे हैं–

प्रथमानुयोग के कथन की पद्धति

प्रथमानुयोग के संबंध में पृष्ठ २६८ में कहा है कि **"प्रथमानुयोग में तो संसार की विचित्रता, पुण्य पाप का फल, महंत पुरुषों की प्रवृत्ति इत्यादि निरूपण से जीवों को धर्म में लगाया है।"** पृष्ठ २६६ में **"परन्तु प्रयोजन जहाँ तहाँ पाप को छुड़ाकर धर्म में लगाने का प्रगट करते हैं।" "प्रथम अर्थात् अव्युत्पन्न मिथ्यादृष्टि उनके अर्थ जो अनुयोग वह प्रथमानुयोग है।"** पृष्ठ २७३ में **"उपदेश में कहीं व्यवहार वर्णन है, कहीं निश्चय वर्णन है। यहाँ उपचाररूप व्यवहार वर्णन किया है, इसप्रकार इसे प्रमाण करते हैं।"**

इसी पृष्ठ में आगे कहा है – **"प्रथमानुयोग में उपचाररूप किसी धर्म का अंग होने पर सम्पूर्ण धर्म हुआ कह देते हैं।" "सम्यक्त्व तो तत्त्वश्रद्धान होने पर ही होता है, परन्तु निश्चय सम्यक्त्व का तो व्यवहार-सम्यक्त्व में उपचार किया और व्यवहार सम्यक्त्व के किसी एक अंग में सम्पूर्ण व्यवहार सम्यक्त्व का उपचार किया है इसप्रकार उपचार द्वारा धर्म हुआ कहते हैं।"**

पृष्ठ २८६ में **"प्रथमानुयोग में तो अलंकार शास्त्र की व काव्यादि शास्त्रों की पद्धति मुख्य है।"** पृष्ठ २८६ में **"सरागी जीवों का मन केवल वैराग्य कथन में नहीं लगता, इसलिये जिसप्रकार बालक को बताशे के आश्रय से औषधि**

देते हैं, उसी प्रकार सरागी को भोगादि कथन के आश्रय से धर्म में रुचि कराते हैं।" इस पद्धति को समझ कर प्रथमानुयोग का अभ्यास करना। इस अनुयोग में जीव के अशुभभाव छुड़ाकर शुभभाव में लगाने का मूल प्रयोजन होता है।

करणानुयोग के कथन की पद्धति

करणानुयोग के संबंध में पृष्ठ २६६ में कहते हैं कि "करणानुयोग में जीवों के व कर्मों के विशेष तथा त्रिलोकादि की रचना निरूपित करके जीवों को धर्म में लगाया है।" "इसके अभ्यास से जीव पाप से विमुख होकर धर्म में लगते हैं।" पृष्ठ २७० में "करण" अर्थात् गणित कार्य के कारणरूप सूत्र, उनका जिसमें "अनुयोग" - अधिकार हो, वह करणानुयोग है।" पृष्ठ २७५ में "जैसा केवलज्ञान द्वारा जाना वैसा करणानुयोग में व्याख्यान है।" तथा आगे कहा है "एक वस्तु में भिन्न-भिन्न गुणों का व पर्यायों का भेद करके निरूपण करते हैं तथा जीव पुद्‌गलादि यद्यपि भिन्न-भिन्न हैं, तथापि संबंधादिक द्वारा अनेक द्रव्य से उत्पन्न गति, जाति आदि भेदों को एक जीव के निरूपित करते हैं-इत्यादि व्याख्यान व्यवहारनय की प्रधानता सहित जानना।"

इसी पृष्ठ में आगे कहा है –"करणानुयोग में जो कथन है, वे कितने ही तो छद्‌मस्थ के प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर होते हैं तथा जो (गोचर) न हों उन्हें आज्ञा प्रमाण द्वारा मानना।" पृष्ठ २७७ में "करणानुयोग में तो यथार्थ पदार्थ बतलाने का मुख्य प्रयोजन है, आचरण कराने की मुख्यता

नहीं है। इसलिए यह तो चरणानुयोगादिक के अनुसार प्रवर्तन करे, उससे जो काम होना है वह स्वयमेव ही होता है जैसे -आप कर्मों के उपशमादि करना चाहें तो कैसे होंगे ? आप तो तत्त्वादिक का निश्चय करने का उद्यम करें, उससे स्वयमेव ही उपशमादि सम्यक्त्व होते हैं।" पृष्ठ २६० में बताया है कि **"जीव कर्मादिक के नाना प्रकार से भेद जानें, उसमें रागादिक करने का प्रयोजन नहीं है, इसलिए रागादिक बढ़ते नहीं हैं, वीतराग होने का प्रयोजन जहाँ-तहाँ प्रगट होता है। रागादि मिटाने का कारण है।"** इसप्रकार इस अनुयोग में व्यवहारनय की प्रधानता से कथन है इसको जानकर तथा ऐसा समझकर, अभ्यास करना चाहिये।

इतना विशेष समझना कि इस अनुयोग में जीव की पर्याय में वर्तने वाले सूक्ष्म भावों का भी निमित्त की मुख्यता से कथन करके ज्ञान कराया है तथा वस्तुओं की यथार्थ स्थिति जो सर्वज्ञ के ज्ञान में ज्ञात हुई है, उसका विवेचन किया गया है। जैसे थर्मामीटर शरीर की गरमी का मात्र ज्ञान करा देता है, उसीप्रकार करणानुयोग आत्मा की अशुद्धि का ज्ञान करा देता है।

चरणानुयोग के कथन की पद्धति

चरणानुयोग के संबंध में पृष्ठ २७० में कहा है **"जो जीव हित अहित को नहीं जानते, हिंसादिक पापकार्यों में तत्पर रहते हैं, उन्हें वे किसप्रकार पापकार्यों को छोड़कर धर्म कार्यों में लगें, उसप्रकार उपदेश दिया है।"** पृष्ठ २७१

यथार्थ श्रद्धान कराने का प्रयोजन है।" आगे कहा है कि **"द्रव्यानुयोग में जहाँ निश्चय अध्यात्म उपदेश की प्रधानता हो, वहाँ व्यवहार धर्म का भी निषेध करते हैं।"**

लेकिन पृष्ठ २८५ में इसका स्पष्टीकरण भी किया है **–"इसीप्रकार अन्य व्यवहार का निषेध वहाँ किया हो उसे जानकर प्रमादी नहीं होना ! ऐसा जानना कि जो केवल व्यवहार साधन में ही मग्न हो, उनको निश्चय की रुचि कराने के अर्थ व्यवहार को हीन बतलाया है।"** इस ही पृष्ठ में कहा है कि **"द्रव्यानुयोग में भी चरणानुयोगवत् ग्रहणत्याग कराने का प्रयोजन है, इसलिये छद्मस्थ के बुद्धिगोचर परिणामों की अपेक्षा ही वहाँ कथन करते हैं। इतना विशेष है कि चरणानुयोग में तो बाह्य क्रिया की मुख्यता से वर्णन करते हैं, द्रव्यानुयोग में आत्मपरिणामों की मुख्यता से निरूपण करते हैं।"**

पृष्ठ २८७ में कहा कि **"द्रव्यानुयोग में न्यायशास्त्रों की पद्धति मुख्य है क्योंकि वहाँ निर्णय करने का प्रयोजन है।"** पृष्ठ २८८ में कहा है **"जिसप्रकार यथाख्यातचारित्र होने पर तो दोनों अपेक्षा शुद्धोपयोग है परन्तु निचली दशा में द्रव्यानुयोग अपेक्षा तो कदाचित् शुद्धोपयोग होता है परन्तु करणानुयोग अपेक्षा सदा काल कषाय अंश के सद्भाव से शुद्धोपयोग नहीं है। इसीप्रकार अन्य कथन जान लेना।"** टोडरमलजी साहब पृष्ठ २९२ पर द्रव्यानुयोग में दोष–कल्पना के निराकरण प्रकरण में, **'कोई जीव द्रव्यानुयोग के कथन को सुनकर स्वछन्द हो जावेंगे'**, ऐसी मिथ्या कल्पना के

उत्तर में कहते हैं कि "जैसे गधा मिश्री खाकर मर जाये तो मनुष्य तो मिश्री खाना नहीं छोड़ेंगे, उसीप्रकार विपरीत बुद्धि अध्यात्म ग्रन्थ सुनकर स्वच्छन्द हो जावे तो विवेकी तो अध्यात्म ग्रन्थों का अभ्यास नहीं छोड़ेंगे......इसलिए जो भलीभांति उनको सुने वह तो स्वच्छन्द होता नहीं परन्तु एक बात सुनकर अपने अभिप्राय से कोई स्वच्छन्द हो तो ग्रन्थ का तो दोष है नहीं, उस जीव ही का दोष है तथा यदि झूठे दोष की कल्पना करके अध्यात्म शास्त्रों को पढ़ने-सुनने का निषेध करें तो मोक्षमार्ग का मूल उपदेश तो वहीं है, इसका निषेध करने से तो मोक्षमार्ग का निषेध होता है।" इसी पृष्ठ में आगे कहा है कि "अध्यात्म ग्रन्थों से कोई स्वच्छन्द हो, सो वह तो पहिले भी मिथ्यादृष्टि था, अब भी मिथ्यादृष्टि ही रहा। इतना ही नुकसान होगा कि सुगति न होकर कुगति होगी परन्तु अध्यात्म उपदेश न होने पर बहुत जीवों के मोक्षमार्ग की प्राप्ति का अभाव होता है और इससे बहुत जीवों का बहुत बुरा होता है इसलिए अध्यात्म उपदेश का निषेध नहीं करना।" इसी की पुष्टि आगे पृष्ठ २८३ में करते हैं कि "जिनमत में तो यह परिपाटी है कि पहिले सम्यक्त्व होता है फिर व्रत होते हैं, वह सम्यक्त्व स्वपर का श्रद्धान होने पर होता है और वह श्रद्धान द्रव्यानुयोग के अभ्यास करने पर होता है इसलिए प्रथम द्रव्यानुयोग के अनुसार श्रद्धान करके सम्यग्दृष्टि हो पश्चात् चरणानुयोग के अनुसार व्रतादि धारण करके व्रती हो। इसप्रकार मुख्य रूप से तो निचली दशा में ही द्रव्यानुयोग कार्यकारी है।"

आगे कहते हैं **"अभ्यास करने से स्वरूप भली-भांति भासित होता है, अपनी बुद्धि अनुसार थोड़ा-बहुत भासित हो परन्तु सर्वथा निरूद्यमी होने का पोषण करे, वह तो जिनमार्ग का द्वेषी होना है।"** इसी पृष्ठ में उपसंहार करते हुये कहते हैं **"इसलिये आत्मानुभवानादिक के अर्थ द्रव्यानुयोग का अवश्य अभ्यास करना।"** इसप्रकार उक्त पद्धति को लक्ष्य में रखकर द्रव्यानुयोग का अभ्यास करना चाहिये। इस अनुयोग का उद्देश्य आत्मिक सुख प्राप्त करने के लिये अपने आत्मा के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान श्रद्धान कराने का है।

व्याकरणादि शास्त्रों का अभ्यास

व्याकरण न्यायादि ग्रन्थों के अभ्यास के विषय में पण्डित टोडरमलजी साहब पृष्ठ २८८ में कहते हैं कि **"यहाँ इतना है कि ये भी जैन शास्त्र हैं ऐसा जानकर इनके अभ्यास में बहुत नहीं लगना। यदि बहुत बुद्धि से इनका सहज जानना हो और इनको जानने से अपने रागादिक विकार बढ़ते न जाने तो इनका भी जानना होओ, अनुयोग शास्त्रवत् ये शास्त्र बहुत कार्यकारी नहीं हैं, इसलिये इनके अभ्यास का विशेष उद्यम करना योग्य नहीं हैं।"**

इसप्रकार उपर्युक्त पद्धति, विधान, प्रयोजन आदि को समझकर चारों अनुयोगों का अभ्यास करने से यथार्थ तत्त्व बोध प्राप्त होगा जिससे मिथ्यात्व का नाश होकर सम्यक्त्व प्राप्त होगा क्योंकि पृष्ठ २३७ में कहते हैं कि **"आत्मज्ञान-शून्य आगमज्ञान भी कार्यकारी नहीं है।"** पण्डित टोडरमलजी

साहब ने चारों अनुयोगों के विधान को समझकर क्या करना इस विषय में पृष्ठ २८६ पर लिखा है कि **"सो जहाँ जैसा सम्भव हो वहाँ वैसा समझ लेना।"** इसप्रकार चारों अनुयोगों में कथन किस पद्धति से किया गया है एवं कौनसा कथन किस मुख्यता से किया गया है तथा उससे वीतरागता रूपी प्रयोजन की सिद्धि किसप्रकार होती है। इन सबको अध्ययन के पहिले मोक्षार्थी को समझना आवश्यक है।

निश्चयनय एवं व्यवहारनय को समझने की प्रणाली

उपर्युक्त चारों अनुयोगों के कथन में निश्चय व्यवहार की बात आई है अतः उसका स्वरूप समझना भी तत्त्व निर्णय के लिये अति आवश्यक है। इस विषय में मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ १९३ में बताया है कि **"वहाँ जिनागम में निश्चय व्यवहाररूप वर्णन है। उनमें यथार्थ का नाम निश्चय है, उपचार का नाम व्यवहार है।"** तथा पृष्ठ २५१ में कहा है कि **"व्यवहार नय स्वद्रव्य-परद्रव्य को व उनके भावों को व कारण कार्यादिक को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है। सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व है, इसलिये उसका त्याग करना तथा निश्चय नय उन्हीं को यथावत् निरूपण करता है, किसी को किसी में नहीं मिलाता है, सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिये उसका श्रद्धान करना।"**

"यहाँ प्रश्न है कि यदि ऐसा है तो जिनमार्ग में दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है, सो कैसे?"

समाधान - "जिनमार्ग में कहीं तो निश्चयनय की मुख्यता लिये व्याखान है उसे तो "सत्यार्थ ऐसे ही है" - ऐसा जानना तथा कहीं व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे 'ऐसे हैं नहीं', निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है" ऐसा जानना। इसप्रकार जानने का नाम ही दोनों नयों का ग्रहण है तथा दोनों नयों के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर ऐसे भी है, ऐसे भी है - इसप्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से दोनों नयों का ग्रहण करना नहीं कहा है।"

निश्चय को अंगीकार कराने के लिए व्यवहार से उपदेश होता है

पृष्ठ २५२ में कहा है कि **"इस निश्चय को अंगीकार करने के लिए व्यवहार द्वारा उपदेश देते हैं परन्तु व्यवहारनय है सो अंगीकार करने योग्य नहीं है।"** इसी पृष्ठ में आगे कहते हैं **"तथा निश्चय से वीतराग भाव मोक्षमार्ग है, उसे जो नहीं पहिचानते उनको ऐसे ही कहते रहें तो वे समझ नहीं पायें। तब उनको व्यवहारनय से तत्त्वश्रद्धान ज्ञानपूर्वक परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा व्रत, शील, संयमादिरूप वीतराग भाव के विशेष बतलाये, तब उन्हें वीतराग भाव की पहिचान हुई। इसी प्रकार अन्यत्र भी व्यवहार बिना निश्चय के उपदेश का न होना जानना।"** आगे इस ही बात को पुष्ट करते हैं **"तथा यहाँ व्यवहार से नर-नारकादि पर्याय ही को जीव नहीं मान लेना।"** जीव के संयोग से शरीरादि को भी उपचार से जीव कहा, सो कथन

मात्र ही है परमार्थ से शरीरादिक जीव होते नहीं - ऐसा ही श्रद्धान करना।" "तथा अभेद आत्मा में ज्ञान दर्शनादि भेद किए तो उन्हें भेद रूप ही नहीं मान लेना, क्योंकि भेद तो समझाने के अर्थ किये हैं, निश्चय से आत्मा अभेद ही है, उस ही को जीव वस्तु मानना। संज्ञा संख्यादि से भेद कहे सो कथन मात्र ही हैं, परमार्थ भिन्न-भिन्न है नहीं - ऐसा ही श्रद्धान करना।"

आगे कहते हैं – "परद्रव्य का निमित्त मिटाने की अपेक्षा से व्रतशील-संयमादिक को मोक्षमार्ग कहा, सो इन्हीं को मोक्षमार्ग नहीं मान लेना, क्योंकि परद्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा के हो तो आत्मा परद्रव्य का कर्त्ता हर्त्ता हो जाये, परन्तु कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन है नहीं, इसलिये आत्मा अपने भाव रागादिक हैं उन्हें छोड़कर वीतरागी होता है, इसलिये निश्चय से वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है। वीतराग भावों के और व्रतादिक के कदाचित् कार्य-कारणपना है, इसलिये व्रतादिक को मोक्षमार्ग कहा सो कथन मात्र ही है, परमार्थ से बाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नहीं है - ऐसा ही श्रद्धान करना।" पृष्ठ २५३ में कहा है कि "इसीप्रकार अन्यत्र भी व्यवहारनय का अंगीकार नहीं करना, ऐसा जान लेना।"

व्यवहार उपदेश अपने लिए कैसे कार्यकारी है

आगे पृष्ठ २५३ पर प्रश्न किया है कि "व्यवहारनय पर को उपदेश ही में कार्यकारी है या अपना भी प्रयोजन साधता है ?"

_समाधान_ - "आप भी जब तक निश्चयनय से प्ररूपित वस्तु को न पहिचाने तब तक व्यवहार मार्ग से वस्तु का निश्चय करे इसलिये निचली दशा में अपने को भी कार्यकारी है परन्तु व्यवहार को उपचार मात्र मानकर उसके द्वारा वस्तु को ठीक प्रकार समझे तब तो कार्यकारी हो परन्तु यदि निश्चयवत् व्यवहार को भी सत्यभूत मानकर 'वस्तु ही इसप्रकार है' ऐसा श्रद्धान करे तो उलटा अकार्यकारी हो जावे।" यही पुरुषार्थसिद्धयुपाय की गाथा संख्या ६–७ में भी कहा है।

उपर्युक्त प्रकार से निश्चय, व्यवहार के स्वरूप को भले प्रकार यथावत् समझकर चारों अनुयोगों के शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिये।

उपरोक्त कथन में दोष कल्पना का निराकरण

इस ही पृष्ठ २५३ में कहा है – **"यहाँ कोई निर्विचारी पुरुष ऐसा कहे कि तुम व्यवहार को असत्यार्थ-हेय कहते हो, तो हम व्रत, शील, संयमादिक व्यवहारकार्य किसलिये करें ? सबको छोड़ देंगे।"**

उससे कहते हैं कि **कुछ व्रत, शील, संयमादिक का नाम व्यवहार नहीं है, इनको मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है, उसे मानना छोड़ दे और ऐसा श्रद्धान कर कि इनको तो बाह्य सहकारी जानकर उपचार से मोक्षमार्ग कहा है, यह तो परद्रव्याश्रित हैं तथा सच्चा मोक्षामार्ग वीतरागभाव है, वह स्वद्रव्याश्रित है। इसप्रकार व्यवहार को असत्यार्थ-हेय**

जानना। व्रतादिक को छोड़ने से तो व्यवहार का हेयपना होता नहीं है।

फिर हम पूछते हैं कि व्रतादिक को छोड़कर क्या करेगा ? यदि हिंसादिरूप प्रवर्तेगा तो वहाँ तो मोक्षमार्ग का उपचार भी संभव नहीं है, वहाँ प्रवर्तने से क्या भला होगा ? नरकादि प्राप्त करेगा। इसलिये ऐसा करना तो निर्विचारीपना है तथा व्रतादिकरूप परिणति को मिटाकर केवल वीतराग उदासीनभावरूप होना बने तो अच्छा ही है, वह निचलीदशा में हो नहीं सकता, इसलिये व्रतादि साधन छोड़कर स्वच्छन्द होना योग्य नहीं है।"

ग्रन्थान्तरों में भी आगम अभ्यास की पद्धति

श्रीमद् जयसेनाचार्य ने समयसार गाथा संख्या १२० की टीका में निम्न पद्धति अपनाने का भी आदेश किया है, यथा –

"इति शब्दनयमतागमभावार्थाः व्याख्यानकाले यथासंभव सर्वत्र ज्ञातव्याः" अर्थ-**शब्दार्थ, नयार्थ,, मतार्थ, आगमार्थ तथा भावार्थ-व्याख्यान के अवसर पर सर्वत्र जान लेना।** उपर्युक्त पद्धति को ही **पंचास्तिकाय गाथा नं. २७ की टीका में** उक्त आचार्य महाराज ने तथा **परमात्मप्रकाश श्लोक नं. १ की टीका में** तथा **वृहद् द्रव्यसंग्रह की गाथा नं. २ की टीका में** भी **ब्रह्मदेव सूरि** ने बताया है।

(१) **शब्दार्थ**- शब्द का अर्थ (२) **नयार्थ** - यह कथन किस नय की मुख्यता से किया है यह समझना। (३) **मतार्थ**

– यह कथन किसप्रकार की मान्यता को सम्यक् कराने की मुख्यता से किया गया है यह समझना। (४) **आगमार्थ** - आगम में प्रसिद्ध अर्थ क्या है उससे मिलान करना। (५) **भावार्थ** - इष्टार्थ तो वीतरागता है अतः इस कथन का तात्पर्य अर्थात् भावार्थ तो एकमात्र वीतरागता निकलना चाहिये ऐसा समझना।

उपरोक्त पाँचों प्रकारों को समझकर तद्नुसार अध्ययन करें तो वास्तविक अभिप्राय समझने में आ सकता है। जैसे (१) **शब्दार्थ** - का ज्ञान यथार्थ हुए बिना तो समझने का आधार ही क्या रहेगा। (२) **नयार्थ** - अर्थात् प्रस्तुत कथन किस नय की मुख्यता से है। जिनवाणी में द्रव्यार्थिक–पर्यायर्थिक दो नय कहे हैं। दोनों प्रकार के नयों का स्वरूप परस्पर विरोधी है। अतः द्रव्यार्थिक के कथन को पर्यायार्थिक का स्वरूप मान लें तो आत्मशुद्धि का अभाव हो जावेगा और पर्यायार्थिक के कथन को द्रव्यार्थिक का स्वरूप मान लेगा तो स्वच्छन्दता का पोषण कर संसार बढ़ावेगा। (३) **मतार्थ** - को समझे बिना, किस मान्यता को खंडन करने के लिये तथा किस अभिप्राय की पुष्टि के लिये कथन किया गया है, उसका यथार्थ ज्ञान करे बिना अपनी आत्मशुद्धि के लिये उक्त कथन का उपयोग कैसे हो सकेगा ? (४) **आगमार्थ** - आगम के आलोक में उक्त कथन का अभिप्राय आगम के अनुसार होना चाहिये। उक्त कथन का जो अभिप्राय मैंने समझा है, वह आगम से मेल खाता है तो जो अभिप्राय मैंने समझा है, वही

सत्य है। ऐसी निःशंकता आ जाती है। (५) **भावार्थ** - उपरोक्त चारों प्रक्रियाओं से समर्थित अभिप्राय वीतरागता पोषक होना चाहिये ऐसा उक्त विषय का भावार्थ समझकर, उसको निःशंकता के साथ स्वीकार करके तदनुकूल अपनी श्रद्धा उत्पन्न कर आचरण करे तो वह कथन अवश्य हमारे कल्याण का कारण बनेगा।

ग्रन्थान्तर में निर्णय करने के लिये चार प्रकार की पद्धति भी बताई है। श्रवण, गृहण, धारण, निर्धारण एवं परिणमनः तात्पर्य है कि परिणमन के पूर्व चारों पद्धतियाँ अपनाने से ही परिणमन संभव है।

तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय ६ के सूत्र २५ में भी स्वाध्याय के ५ भेद बताये हैं।

(१) **वाचना** - वीतरागता पोषक ग्रन्था को स्वयं पढना तथा दूसरों को सुनाना।

(२) **पृच्छना** - संशय को दूर करने के लिये अथवा विषय को दृढ़ करने के लिये प्रश्न अथवा चर्चा द्वारा स्पष्टीकरण प्राप्त करना।

(३) **अनुप्रेक्षा** - समझे हुए विषय का बारम्बार चिन्तन करना, मनन करना।

(४) **आम्नाय** - आवश्यक विषय को याद करना।

(५) **धर्मोपदेश** - वीतरागी धर्म का उपदेश करना।

उपरोक्त पाँचों भेद स्वाध्याय नाम के अन्तरंग तप के हैं। निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनिराज को अन्तरंग तप में भी उपरोक्त स्वाध्याय आवश्यक है एवं उसी स्वाध्याय करने के पाँच प्रकार

हैं अर्थात् पद्धति है।

इसप्रकार आगमोक्त पद्धतियों को समझकर, तद्नुसार स्वाध्याय करने से ग्रन्थ का एवं कथन का निश्चित रूप से यथार्थ भाव समझ में आवेगा।

शास्त्रों का अर्थ समझने की मास्टर कुंजी

संक्षेप में कहो तो –'जिस द्रव्य के कार्य (पर्याय) को उस ही द्रव्य का बताया हो' यह निश्चय का कथन समझना। 'एक द्रव्य का कार्य अन्य द्रव्य में बताया हो अथवा एक द्रव्य के कार्य (पर्याय) को अन्य द्रव्य द्वारा किया हुआ बतलाया हो' वह व्यवहार का कथन जानना। जैसे मतिज्ञानरूप आत्मा की पर्याय को ज्ञानावरणीय कर्म के द्वारा हुई कहना, यह व्यवहार कथन हुआ और उसी पर्याय को आत्मा की कहना, यह निश्चय कथन है। इसी प्रकार अभेद वस्तु को भेद रूप कहना अथवा भेद को अभेद वस्तु रूप कहना व्यवहार कथन है तथा अभेद को अभेद एवं भेद को भेद रूप कहना निश्चय कथन है आदि आदि। व्यवहार के कथन – जैसी ही वस्तु को मान ले तो ऐसे श्रद्धान को आचार्यों ने मिथ्या श्रद्धा कहा है और ऐसी श्रद्धा को छोड़ने का आदेश दिया है – कारण अपने रागादि भावों को कर्मकृत माननें से उसको टालने का पुरुषार्थ समाप्त हो जाता है और श्रद्धा में पराधीनता आ जाती है। ऐसी मान्यता वीतरागता की घातक सिद्ध होती है, ऐसा शास्त्र का तात्पर्य नहीं हो सकता। शास्त्रों का यथार्थ भाव समझने के लिये शास्त्राभ्यासी को उपर्युक्त निश्चय–व्यवहार की मास्टर

कुन्जी का यथास्थान प्रयोग करने से कहीं भी भूल नहीं पड़ेगी। अन्यथा शास्त्र अध्ययन करके भी अपनी मिथ्या मानयता का ही पोषण करता रहेगा।

मोक्षमार्ग दो नहीं हैं, कथन पद्धति दो प्रकार है

निश्चय व्यवहार के संबंध में ऐसी मिथ्या मान्यता भी चलती है कि 'निश्चय मोक्षमार्ग एवं व्यवहार मोक्षमार्ग, इसप्रकार मोक्षमार्ग दो है, अतः दोनों में से किसी से भी मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है, अथवा दोनों मार्गों को ग्रहण करना चाहिये।' इस मान्यता का भी निराकरण आवश्यक समझकर यहाँ स्पष्ट करते हैं। मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २४८ में कहा है कि **"सो मोक्षमार्ग दो नहीं है, मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार है। जहाँ सच्चे मोक्षमार्ग को मोक्षमार्ग-निरूपित किया जाये सो निश्चय मोक्षमार्ग है और जहाँ जो मोक्षमार्ग तो है नहीं परन्तु मोक्षमार्ग का निमित्त है व सहचारी है उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहा जाये सो व्यवहार मोक्षमार्ग है क्योंकि निश्चय व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है। "सच्चा निरूपण सो निश्चय" "उपचार निरूपण सो व्यवहार" इसलिये निरूपण-अपेक्षा दो प्रकार मोक्षमार्ग जानना (किन्तु) एक निश्चय मोक्षमार्ग है, एक व्यवहार मोक्षमार्ग है, इसप्रकार दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है तथा निश्चय-व्यवहार दोनों को उपादेय मानता है, वह भी भ्रम है क्योंकि निश्चय-व्यवहार का स्वरूप तो परस्पर विरोध सहित है।"**

श्रद्धान निश्चय का, प्रवृत्ति व्यवहार की करना मानना, मिथ्या कैसे है ?

पृष्ठ नं. २४६ में कहते हैं कि **"तू ऐसा मानता है कि - सिद्ध समान शुद्ध आत्मा का अनुभवन सो निश्चय और व्रत, शील, संयमादिरूप प्रवृत्ति सो व्यवहार, सो तेरा ऐसा मानना ठीक नहीं है क्योंकि किसी द्रव्यभाव का नाम निश्चय और किसी का नाम व्यवहार ऐसा नहीं है। एक ही द्रव्य के भाव को उस स्वरूप ही निरूपण करना सो निश्चयनय है, उपचार से उस द्रव्य के भाव को अन्य द्रव्य के भावस्वरूप निरूपण करना सो व्यवहार है।" जैसे मिट्टी के घड़े को 'घी का घड़ा' कहना यह व्यवहार है।"** आगे पृष्ठ २५० में एक प्रश्न उठाया है कि – **"श्रद्धान तो निश्चय का रखते हैं और प्रवृत्ति व्यवहार रूप रखते हैं। इसप्रकार हम दोनों को अंगीकार करते हैं। सो ऐसा भी नहीं बनता क्योंकि निश्चय का निश्चय रूप और व्यवहार का व्यवहार रूप श्रद्धान करना योग्य है। एक ही नय का श्रद्धान होने से एकान्त मिथ्यात्व होता है तथा प्रवृत्ति में नय का प्रयोजन नहीं है। प्रवृत्ति तो द्रव्य की परिणति है, वहाँ जिस द्रव्य की परिणति हो उसको उसी की प्ररूपित करे सो निश्चयनय और उस ही को अन्य द्रव्य की प्ररूपित करे सो व्यवहार नय - ऐसे अभिप्रायानुसार प्ररूपण से उस प्रवृत्ति में दोनों नय बनते हैं।"** इसप्रकार के कथन को सुन कर फिर शिष्य जिज्ञासा प्रगट करता है कि **"तो क्या करें ? सो कहते हैं - निश्चयनय**

से जो निरूपण किया हो उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना और व्यवहार नय से जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना।"

निश्चय उपदेश को सुनकर व्यवहार को छोड़ देंगे ? ऐसा मानने में दोष

उपरोक्त कथन सुन कर पृष्ठ संख्या २५३ में शिष्य कहता है कि "तुम व्यवहार को असत्यार्थ-हेय कहते हो तो **हम व्रत, शील, संयमादि व्यवहार कार्य किसलिए करें ? सबको छोड़ देंगे। उससे कहते हैं कि - व्रत, शील, संयमादिक का नाम व्यवहार नहीं है, इनको मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है, उसे छोड़ दे और ऐसा श्रद्धान कर कि इनको तो बाह्य सहकारी जानकर उपचार से मोक्षमार्ग कहा है, ये तो परद्रव्याश्रित हैं तथा सच्चा मोक्षमार्ग वीतरागभाव है, वह स्वद्रव्याश्रित है। इसप्रकार व्यवहार को असत्यार्थ हेय जानना। व्रतादिक को छोड़ने से तो व्यवहार का हेयपना होता नहीं है।"**

उपसंहार

इसप्रकार पण्डित टोडरमलजी साहब ने निश्चय–व्यवहार के विषय में बहुत ही सुन्दर स्पष्टीकरण किया है, इस दृष्टिकोण को समझ कर तथा इस दृष्टि को लक्ष्य में रखकर शास्त्रों का अध्ययन करे व अर्थ समझे तो यथार्थ वस्तुस्वरूपं का ज्ञान हो और मिथ्या श्रद्धा का नाश हो।

इसलिये मोक्षार्थी जिज्ञासु जीव को अपने कल्याण करने की दृष्टि से उपर्युक्त पद्धति को समझकर तत्त्व निर्णय करना चाहिए। पृष्ठ २६६ में भी कहा है कि **"उन प्रकारों को पहिचान कर अपने में ऐसा दोष हो तो उसे दूर करके सम्यक् श्रद्धानी होना, औरों के ही दोष देख-देख कर कषायी नहीं होना क्योंकि अपना भला-बुरा तो अपने परिणामों से है।"**

इसप्रकार मोक्षमार्ग प्रकाशक एवं अन्य ग्रन्थों में शास्त्रों के अर्थ करने की जो पद्धति बताई है उसके अनुसार शास्त्रों का अभ्यास करके सभी जीव अपने आत्मा का कल्याण करें, इसी भावना के साथ इस लेख को समाप्त करता हूँ।

- नेमीचन्द पाटनी

●●●